



रणेन्द्र के 'उपन्यास ग्लोबल गांव के देवता' में पर्यावरणीय चेतना

विजय लक्ष्मी मिश्रा

शोध छात्रा, हिंदी विभाग,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

अनिल कुमार राय

प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

भूमिका

'ग्लोबल गांव के देवता' कथाकार रणेन्द्र का उपन्यास आदिवासियों के जीवन का संतप्त सारांश है।

रणेन्द्र प्रशासनिक सेवा से संबद्ध रहे हैं। इससे उन्हें झारखंड के आदिवासियों के रहन-सहन को नजदीक से देखने का अवसर मिला। जिसके कारण उनके लेखन में मानवीय संवेदना और प्रकृति के प्रति संवेदना दिखाई पड़ती है।

'ग्लोबल गांव के देवता' जो पूरी पृथ्वी एक गांव के रूप में बदल गई है उसके देवता बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिक हैं।

यह उपन्यास आधुनिक देवासुर संग्राम का वर्णन करता है। देवता है बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिक और असुर है जंगल के आदिवासी, जिनके पास उसे जंगल के अलावा कुछ भी नहीं है। यहां वे आदिम युग से रहते आ रहे हैं। इसी प्रकृति के बीच में उनके संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ है। वे प्रकृति से कुछ लेने से पहले उसकी अनुमति लेते हैं। प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने की आवश्यकता होती है।

वन से जीवन यापन की सामग्री लेने के पश्चात वह वन को धन्यवाद भी देते हैं। मानव सभ्यता का विकास प्रकृति की गोद में हुआ। मानव के विकास में प्रकृति ही सहायक है। औद्योगीकरण के पश्चात मनुष्य प्रकृति के उपकार को भूल गया और उसका भरपूर दोहन शुरू कर दिया। जिसके कारण पर्यावरणीय संकट की समस्या उत्पन्न हो गई। आज जलवायु परिवर्तन के कारण मानव समेत अन्य सभी प्राणियों का जीवन संकट में पड़ गया है।

साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए साहित्यकारों ने इस समस्या का अनुभव किया और उन्हें अपनी रचना में स्थान दिया। इस उपन्यास में आदिवासी समाज के जीवन, उनकी संस्कृति, देवी-देवता, मिथक और परंपराओं के साथ-साथ प्रकृति और वन संसाधनों पर हो रहे कॉर्पोरेट कंपनियों के कब्जे को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। यह उपन्यास पर्यावरणीय विमर्श का जीवन्त दस्तावेज है। यह उपन्यास सन 2009 में प्रकाशित हुआ था।

यह उपन्यास झारखंड की 'असुर जनजाति' के संघर्षों का बखान करता है। लेकिन सूक्ष्म तौर पर यह उपन्यास उसे पूरे समुदाय की संघर्ष गाथा है। इस उपन्यास में रणेन्द्र ने झारखंड के असुरों के संघर्ष का बहुत स्पष्ट और निर्मम चित्र खींचा है। जो अपनी नियति के खिलाफ लड़ रहे हैं। 'असुर जनजाति' के संघर्ष गाथा के माध्यम से दुनिया के अलग-अलग भागों में फैले हुए आदिवासियों के संघर्ष की पड़ताल है।

अमेरिकी महाद्वीप में 'इंका 'और माया' एजटेक और सैकड़ों रेड इंडियन की मुख्य हत्याएं भी असुरों से अलग नहीं है; क्योंकि उन्हें भी आधुनिकता के नाम पर मिटाया गया है। अमेरिका की 'चेराकी' जनजाति सरकारी तंत्र द्वारा किस प्रकार मंथर गति से मृत्यु तक पहुंचाई गई। इसका उल्लेख 'टेल आप टियर्स' (आंसुओं की पगडंडी) के माध्यम से लेखक ने किया है।

रणेन्द्र ने 'असुर जनजाति' के संघर्ष के समकालीनता को कायम रखते हुए उनके संस्कृति के इतिहास की भी पड़ताल की है; जिसे असुर नाम दिया गया है। लेखक शुरू में ही कहता है "अब ध्यान आया कि एतवारी ने इस सुदर्शन व्यक्ति का नाम लालचंद असुर बताया था। सुना तो था कि यह सारा इलाका असुरों का है, किंतु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लंबे-चौड़े, काले-कलूटे, भयानक दांत-वांत निकले हुए माथे पर सींग-वींग लगे होंगे। लेकिन लालचंद को देखकर सब उलट-उलट हो रहा था। बचपन की सारी कहानियां इससे अलग थी।"

असल में असुर अपना संबंध अंगीरस ऋषि से बताते हैं। आग की खोज असुर जनजाति के पूर्वजों ने ही किया था। रुमझुम असुर बताते हैं कि असुर लोग तीन भाग में बंटे हुए हैं। वीर असुर, अगरिया असुर, बिराजिया असुर। प्राचीन बेबी लोन सभ्यता में असुर का अर्थ बलवान होता है। बाद में यह असुर नाम दानव के रूप में

प्रयुक्त होने लगा। स्वाभाविक है जिन लोगों का जीवन यापन, घर परिवार सब जंगल ही है, उन्हें जंगलों का विनाश किस कदर अखरता होगा।

उपन्यास में पर्यावरणीय समस्याएं

जंगल और भूमि की लूट

जंगल आदिवासियों की प्राण रेखा है। जंगल उनका है और वे जंगल के हैं। वह कभी भी जंगल, जंगल और जमीन को हानि नहीं पहुंचते। उनके यहां जमीन का निजी स्वामित्व तो नहीं होता। भूमि सामूहिक होती है। वह पारंपरिक खेती करते हैं और आय के लिए वनों पर निर्भर रहते हैं। दत्ता कोल्हारे कहते हैं “वर्तमान समय में हमने अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए बड़ी ही आसानी से अपने जीवन की सुरक्षा से समझौता कर लिया है क्या हमने कभी सोचा कि आज धरती के जिस हिस्से में हम हैं, वहां पहले क्या था? वहां कोई क्या करता था? अगर हां तो प्रकृति की गोद में रहने वाले लोग कहां गए? मनुष्य जाति द्वारा जिन लोगों के जंगल को काटकर पहाड़ों को तोड़कर निर्वासित कर दिया गया क्या उनके बारे में हम कभी सोचते हैं?”

रणेन्द्र लिखते हैं कि असुरों की भूमि पर स्थानीय दबंग गोनू सिंह से लेकर खदान मालिक और मल्टीनेशनल कंपनी सब की नजर है। सोमा के बाबा की एक एकड़ भूमि मात्र पांच हजार में खदान का दलाल लिखवा लेता है। छोटे-बड़े सभी खदान मालिक लीज की भूमि पर कम, वन विभाग, गैर मजरूआ जमीन, असुर रयैत की जमीन से ज्यादा खनन किया करते थे।

यहां स्थानीय गोनू सिंह, लालचंद असुर के चाचा की हत्या उनके पांच एकड़ धनहर जमीन के लिए ही करता है। रुमझुम असुर कहते हैं कि “हमारी जाति -विनाश की एक झलक मात्र है। इस कहानी में हम वैदिक काल के सप्त-सिंधु के इलाके से लगातार पीछे हटते हुए आजमगढ़, शाहाबाद, आरा, गया, राजगीर से होते हुए इस-प्रांतर कीकट, पौंड्रिक, कोकरहाट से छोटा नागपुर पहुंचे। हजार सालों में कितने इन्द्रों, कितने

पांडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किये, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोक कथाओं और मिथकों में हम जिंदा हैं।”

रुमझुम असुर ने रेड इंडियन वाली उस किताब से ‘टेल आफ का टियर्स’ वाले अध्याय की ओर इशारा किया, शायद इसे पढ़ने से असुरों की जाती विनाश का थोड़ा सा अंदाजा लगाया जा सकता है। मल्टीनेशनल कंपनियां भी बॉक्साइट खनन के लिए असुरों के भूमि का अधिग्रहण करती हैं। सरकार द्वारा भेड़िया संरक्षण पार्क बनाने के नाम पर भी असुरों को बेघर किए जाने का प्रयास किया जाता है। विरोध करने पर या तो वे जान से जाते हैं या फिर जेल की सजा काटते हैं।

जल संकट और प्रदूषण

बॉक्साइट खनन के पश्चात जो गड्ढे बच जाते हैं उन्हें वैसे ही छोड़ दिया जाता है। पाट के वैध-अवैध खनन से जुड़ा मसला तो सबसे जरूरी है। खनन कंपनियों के पास लीज की शर्तें थी और पिछले पच्चीस तीस सालों से जिनकी अनदेखी हो रही थी। वह शर्त को दरकिनार करते हुए खुले खदानों से बॉक्साइट की निकासी के पश्चात बिना गड्ढे भरे यूं ही छोड़े जा रहे थे। कंपनियां लाभ का कुछ भी हिस्सा स्थानीय लोगों के विकास पर खर्च नहीं करती थीं। इन गड्ढों में पानी रिसने के कारण मच्छर पैदा होते थे। जिसके कारण मलेरिया और डायरिया आदि बीमारियां फैल जाती थी। अत्यधिक खनन के कारण पेय जल का भी संकट उत्पन्न हो जाता था। आदिवासी महिलाएं पीने के पानी के लिए भी कई किलोमीटर रोज चलकर जाती थी। बीमारियों से बचाव के लिए कोई अस्पताल आदि की भी व्यवस्था नहीं थी।

आदिवासियों के सांस्कृतिक पर्यावरण में असंतुलन

सांस्कृतिक पर्यावरण वह वातावरण होता है जिसे मानव द्वारा बनाया गया होता है। जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य, रीति-रिवाज, परंपराएं, धर्म, भाषा, कला, साहित्य और व्यक्ति के विचार-व्यवहार और जीवन शैली को प्रभावित करने वाले अन्य कारक शामिल होते हैं। यह वास्तव में उस समूह या समाज की संस्कृति पहचान और जीवन शैली को दर्शाता है, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उदाहरण के लिए एक भारतीय व्यक्ति भारतीय संस्कृति के रीति-रिवाज और त्योहारों से प्रभावित होता है। वही एक अमेरिकी व्यक्ति अपने यहां के संस्कृति से जुड़ा होता है। संस्कृति पर्यावरण में परिवार, समुदाय, भाषा, धार्मिक विश्वास, कला, साहित्य आदि प्रमुख तत्व होते हैं जो किसी समाज की सांस्कृतिक धरोहर और पहचान बनते हैं। यह प्राकृतिक पर्यावरण से अलग होता है क्योंकि मानव निर्मित वातावरण होता है।

विकास परियोजना के नाम पर असुरों को उनकी ही भूमि से बेदखल कर दिया जा रहा है। जिसके कारण वह अपने समुदाय से बिछड़ जाते हैं। क्योंकि रोजगार की तलाश में वह अलग-अलग स्थान पर चले जाते हैं। जिसके कारण उनके संस्कृति पर संकट आ जाता है। उनके पर्व त्यौहार, देवी-देवता, जीवन शैली सब प्रभावित हो जाते हैं उनका सांस्कृतिक पर्यावरण संतुलन बिगड़ जाता है।

जैव विविधता का संकट

इस उपन्यास में रणेन्द्र ने खनन और उसके दुष्परिणामों के विषय में बात करते हैं कि खनन किस तरह प्रकृति को नष्ट कर रहा है। पहाड़ खोदकर खनिज निकलने से न केवल भूमि का स्वरूप बिगड़ता है, बल्कि जल स्रोत भी सूख जाते हैं। जंगल की कटाई के कारण सैकड़ों जीव-जंतु पर संकट आ जाता है। इन जंगलों में तरह-तरह के औषधीय पौधे, जड़ी-बूटी आदि पाए जाते हैं। यदि जंगल काट दिए गए तो यह सभी विलुप्त हो जाएंगे। आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति के बिना अधूरा है। उनका भोजन, औषधियां, अनुष्ठान और त्योहार सब कुछ जंगल, नदी और पहाड़ से जुड़े हुए हैं। उनके गीत और नृत्य में भी प्रकृति की झलक है, इसलिए जैव विविधता का प्रश्न उनके लिए पर्यावरणीय नहीं बल्कि अस्तित्व का प्रश्न है। आदिवासियों के पास प्रकृति से जुड़ा लोक-ज्ञान है। कौन सा पौधा औषधि है, कौन सा पेड़ किस मौसम में फल देता है, नदी कब उफान पर होगी यह सब कुछ जानते हैं। जैव विविधता सिर्फ आदिवासियों का ही नहीं पूरे विश्व का संकट है अगर यह नष्ट हुई तो आने वाले समय में पूरा मानव समाज इसका खामियाजा भुगतेंगा।

रणेन्द्र आदिवासी समस्या को बहुत करीब से देखा है और उनकी समस्याओं पर बहुत गंभीरता से विचार किया है। उनके उपन्यास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विस्थापन, भुखमरी, बेरोजगारी, घुसपैठ और स्त्री-शोषण, धार्मिक-भाषिक अस्मिता का संकट आदिवासियों की प्रमुख समस्याएं हैं। अध्ययन के क्रम में ज्ञात होता है कि, विस्थापन आदिवासियों की प्रमुख समस्या है। इसका प्रमुख कारण है ग्लोबल गांव के देवताओं की खनिज पदार्थों के प्रति बढ़ती भूख और इस खनिज रूपी भूख को शांत करने का एकमात्र स्थल है आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र, क्योंकि अधिकतर खनिज भंडार इन्हीं क्षेत्रों में पाए जाते हैं, अतः उनके दोहन के लिए आदिवासियों का विस्थापन आवश्यक हो जाता है। इसके लिए उन्हें कई प्रकार के प्रलोभन विकास इत्यादि के नाम पर भ्रमित किया जाता है। उनके जमीनों के बदले जो मुआवजे की बात होती है उसका भी जमीनी स्तर पर कोई खास महत्व नहीं होता है। अतः उनकी नियति विस्थापन ही हो जाती है। इसी टीस को उपन्यास का पात्र 'रुमझुम असुर' प्रधानमंत्री को लिखे गए अपने पत्र में करता है। रुमझुम असुर अपने लिखे गए पत्र में कहता है कि "महोदय भेड़िए तो बच जाएंगे पर हम नहीं बच पाएंगे।

बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद और पारिस्थितिकी उपनिवेशवाद

उपन्यास में वैश्वीकरण और बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद को एक नए उपनिवेशवाद के रूप में वर्णित किया गया है। पहले उपनिवेशवाद राजनीतिक और सांस्कृतिक होता था पर अब उसने एक नया रूप धारण कर लिया है। यह प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करता है और स्थानीय लोगों को पलायन के लिए विवश करता है। उपन्यास में बहुराष्ट्रीय कंपनियां रोजगार, विकास की बात करती हैं, पर वास्तविकता के धरातल पर ऐसा बहुत ही कम होता है। जो कंपनियां खनन कार्य करती हैं वह स्थानीय लोगों को रोजगार न देकर बाहरी लोगों की नियुक्ति करती हैं। इससे उस क्षेत्र में बेरोजगारी के साथ-साथ बाहरी आधुनिकता के प्रवेश के कारण उनकी अपनी संस्कृति नष्ट हो जाती है। उपन्यास में राजतंत्र कंपनियों का साझेदार है सरकारी नीतियां वन कानून भूमि अधिग्रहण सब पूंजीपतियों के हित में है। पुलिस और प्रशासन सब कॉर्पोरेट हित की सेवा में लगे हैं सरकारी नीति भी पर्यावरण के खिलाफ ही है।

निष्कर्ष

‘ग्लोबल गांव के देवता’ हिंदी उपन्यास साहित्य में पर्यावरणीय चेतन का एक बहुआयामी दस्तावेज है। उपन्यास के अध्ययन के पश्चात यह पता चलता है कि विकास का अत्यधिक मूल्य आदिवासी समाज ही अदा कर रहा है। ऐसे विकास का क्या फायदा जो किसी को उजाड़ कर किया जा रहा हो। ‘ग्लोबल गांव’ के देवताओं की भूख आदिवासियों का वर्तमान और भविष्य तब भक्षण कर गई है। उपन्यास यह सिखाता है कि जैव विविधता का प्रश्न केवल पेड़ पौधे और जानवरों का नहीं है, बल्कि यह मानव संस्कृति और भविष्य का प्रश्न है। खनन और पूंजीवादी विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति को बहुत नुकसान पहुंचाया जा रहा है। उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वह पर्यावरण संकट को तकनीकी रूप में ना देख कर, एक सभ्यता के संकट के रूप में देखता है। एक ऐसा समाज नष्ट हो रहा है जो प्रकृति के साथ सम्मान और सहजीवन पर आधारित है।

संदर्भ ग्रंथ:

- 1.रणेन्द्र, ग्लोबल गांव के देवता, माही प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009 ई . 2.अग्रवाल, नीरू, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, अन्नय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2022 ई
- 3.. दीक्षित, डा राजीव, पर्यावरण- दर्शन, निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, संस्करण 2020 ई
4. मिश्र, अनुपम, पर्यावरण के पाठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2024 ई
5. कोल्हारे, दत्ता, हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय संवेदना, समसामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2020 ई

ई पत्रिका:

1. हस्ताक्षर, 2000
2. अपनी माटी, फरवरी 2018
3. शब्द -ब्रह्म, मई 2016